International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(1): 127-129

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(1): 127-129
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 16-11-2016
Accepted: 17-12-2016

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
एसोशिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
के0 ए0 (पी जी) कॉलेज
कासगंज (उ0 प्र0)

Correspondence
डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
एसोशिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
के0 ए0 (पी जी) कॉलेज
कासगंज (उ0 प्र0)

मोक्षविषयक भारतीय विचारों का विवेचन

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार

सारांश
वैदिक एवं लौकिक संस्कृतसाहित्य, पालिसाहित्य तथा हिन्दीसाहित्य पर संक्षेपेण दृष्टिवीक्षण करने पर यह साधुतया सिद्ध होता है कि मोक्षविषयक भारतीयविचारों की एक समृद्ध परम्परा रही है। जीवन एवं मोक्ष के विषय में भारतीयों की दृष्टि सन्तुलित है। जिसमें सत्य, सरलता, दया, सन्तोष, तपादि आचारव्यवस्था के साथ–साथ ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग का सांगोपांग समावेश किया गया है।

प्रस्तावना
भारत की संस्कृति सनातन है। इस देश का चिन्तन समृद्ध और सन्तुलित है। प्राचीनकाल में वैदिक ऋषियों ने मानवजीवन के उद्देश्य के विषय में गहन विचार किया है। जीवन प्रवाहरूप है पुनरपि उसके विनाशी और अमृतरूप की दृष्टि से उसे विद्या और अविद्या के दो भागों में विभाजित किया गया है। [1] अविद्या संसार या देह जो कि विनशनशील है का प्रतीक है वहीं विद्या आत्मा के अमृतत्व को इंगित करती है। इसी तथ्य को दृष्टिपथ में रखकर वैदिक ऋषि प्रार्थना करता है–

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय। [2]

जीवन की दैहिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उसके लिए चतुर्वर्ग या पुरुषार्थचतुष्टय–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का निर्धारण किया गया है। अर्थ और काम नितान्त सांसारिक कर्म हैं किन्तु धर्म उन दोनों का प्रेरक व स्मारक है कि जीवन का वास्तविक उद्देश्य मोक्ष या आत्माराम की प्राप्ति है। इन्हीं चतुवर्ग को ध्यान में रखकर सम्पूर्ण जीवनचर्या को चार आश्रमों में विभाजित किया गया है। धर्म, अर्थ व काम के निमित्त ब्रह्मचर्य व गृहस्थ इन दो आश्रमों को जबकि वानप्रस्थाश्रम मोक्ष की ओर संक्रमण के लिए तथा सन्यासाश्रम पूर्णतया मोक्षमार्ग की सिद्धि के हेतु निर्धारित किया गया है।

मोक्ष या जीवन्मुक्ति के विषय में भारतीय चिन्तन और अनुभव अतिसमृद्ध है यह तथ्य इस संक्षिप्त गवेषणा के द्वारा प्रकटित करने का एक प्रयास किया गया है।

आत्मा एवं ब्रह्मविद्या के विषय में तात्विक वैदिक चिन्तन है उसे समाहित करते हुये कतिपय मौलिक उद्भावनाओं को उपबृंहित करते हुये उपनिषदों का प्रणयन किया गया है। प्रश्नोपनिषद् में वर्णन किया गया है कि–– 'जिनमें न तो कुटिलता है, न असत्य है और न माया (कपट) ही है, उन्हीं को वह विकाररहित ब्रह्मलोक मिलता है।' [3] कुटिलतादि चित्त के मल या विकार हैं जो कि विकारशून्य चैतन्य पर उसीप्रकार विकारों का आभासिक प्रतिबिम्ब निर्मित करते हैं जैसे कि स्फटिकमणि पर जपाकुसुम की रक्तिमा। इन चित्तमलों के अभाव में आत्मा अपने स्वरूप का दर्शन करके मोक्ष को प्राप्त करती है। यजुर्वेद के पुरुषसूक्त के नारायणऋषि मृत्यु से पार पाने का एकमेव मार्ग बतलाते हैं– 'अविद्यारूप अन्धकार से पृथक् आदित्य की भाँति प्रकाशस्वरूप इस महान पुरुष (परमात्मा) को मैं जानता हूँ उसको जानकर ही मनुष्य मृत्यु को पार कर जाता है। मुक्ति को प्राप्त करने का इससे भिन्न कोई अन्य मार्ग नहीं है।' [4] नारायणऋषि ने ज्ञान को मुक्ति का कारण माना है। विराट् पुरुष के अज्ञानराहित्यादि गुणों की भावना को घनीभूत करके साधक ज्ञान के प्रकाश से स्वस्वरूप का दर्शन करता है। महोपनिषद् में आत्मा के बन्धन का कारण जागतिक पदार्थों में अत्यधिक प्रीति को माना गया है अतः मुक्ति के लिये उन वासनाओं की क्षीणता को आवश्यक माना गया है। [5] इसी उपनिषद् में अन्यत्र कहा गया है कि जगत् में सारा इन्द्रजाल मन के द्वारा ही फैलता है। जब तक मन की यह कल्पना चलती रहती है, तब तक मोक्ष के दर्शन नहीं होते हैं। [6] मन ही इच्छा अथवा वासना का जनक है जो कि निरन्तर मनुष्य को नये–नये विषयास्वादों की लालसा में बाँधे रखता है।

जब भी उन भोगों के प्रति जीवात्मा वितृष्ण होता है मन उसे एक नवीन विषय की आशा दिलाता है इस प्रकार वह जीवनभर मनुष्य को सांसारिक विषयों में बाँधे रखता है। मन के पार जाकर ही मनुष्य मुक्ति की कल्पना कर सकता है।

मोक्षविषयक विचार के इस क्रम में भगवद्गीता ने कतिपय नवीन उद्भावनायें प्रस्तुत की हैं। उस महान ग्रन्थ में ज्ञानयोग के अतिरिक्त कर्मयोग एवं भक्तियोग को भी मुक्ति का मार्ग बताया है। कर्म के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है–– 'नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।' गीता, 3–5। यदि कर्म करते हुये फलाकांक्षा का त्याग कर दिया जाये तो वह कर्म निष्काम कर्म कहलाता है। [7] निष्काम कर्म के साथ–साथ साम्यबुद्धि का होना भी कर्मयोग की सिद्धि के लिए आवश्यक माना गया है। [8] इस प्रकार निष्कामभाव व समत्वबुद्धि से किया गया कार्य जीवात्मा पर कर्मसंस्कार का कारक नहीं बनता है फलतः वह जन्ममृत्यु के बन्धन से विमुक्त होकर दुःखविरहित पद को अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। [9] इसी अभिप्राय को मन में लाकर भागवत में भी कहा गया है–

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसंगोऽर्पितमीश्वरे।
नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः।। भागवत, 11–3–46

वेदोक्त कर्मों की वेद में जो फलश्रुति कही गयी है, वह रोचनार्थ है अर्थात् इसलिए है कि कर्त्ता को ये कर्म अच्छे लगें। अतएव इन कर्मों को उस फल–प्राप्ति के लिए न करें, किन्तु निःसंगबुद्धि से अर्थात् फल की आशा छोड़कर ईश्वरार्पण–बुद्धि से करें; जो पुरुष ऐसा करता है, उसे नैष्कर्म्य से प्राप्त होने वाली सिद्धि मिलती है।

भक्तियोग का मार्ग बतलाते हुये योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं कि अपने सभी कर्मों को मुझ में अर्पित करके निर्मम, निरहंकार और सर्वभूतहितरता होकर निश्चिन्तभाव से विचरण करो। मुझमें मिल जाने पर परमसिद्धि पाये हुये महात्मा उस पुनर्जन्म को नहीं पाते जो कि दुःखों का घर है और अशाश्वत है। [10] हे अर्जुन! ब्रह्मलोक तक (स्वर्ग आदि) जितने लोक हैं वहाँ से कभी न कभी इस लोक में पुनरावर्त्तन अवश्य होता है। परन्तु मुझमें मिल जाने पर पुनर्जन्म नहीं होता है। [11] अग्निपुराण ने निःश्रेयस की सिद्धि के लिए आचार की शुद्धि पर बल दिया है। उसके अनुसार वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रियसंयम, अहिंसा तथा गुरुसेवा– ये परम उत्तम कर्म निःश्रेयस के साधक हैं। [12] सदाचार के अभ्यास के कारण चित्तमलों के क्षीण हो जाने पर निर्मल अन्तःकरणों वाले मनुष्य प्राणिमात्र के प्रति दया, करूणा एवं प्रेम के उद्रेक के फलस्वरूप मैत्रीभाव से आपूरित हो जाता है। ऐसे मनुष्यों के लिए मुक्तिमार्ग सहजरूप से उपलब्ध रहता है। ये विचार विष्णुपुराण में कुछ इस प्रकार वर्णित हैं–– "सदाचारनिष्ठ, विद्या, विनयवाला और पापी के प्रति भी निष्पाप जो विद्वान कठोर के उत्तर में भी प्रिय बोलता है तथा जिसका हृदय मैत्रीभाव से द्रवित है, उसके हाथ में ही मुक्ति रहती है।" [13]

मुक्तिविषयक पुराणों के मन्तव्यों पर विचार करने पर यह सुस्पष्ट है कि उसमें आचारविषयक मान्यताओं पर विशेष बल दिया गया है। पतंजलि के अष्टांगयोग में प्रथम दो अंग यम [14] व नियम [15] का सम्बन्ध आचारशास्त्र से ही है जिसके द्वारा साधक के बाह्य व आन्तरिक चित्तमलों का प्रक्षालन किया जाता है।

योगवाशिष्ठ में अतीव रोचक ढंग से एवं आलंकारिक भाषा में शरीर व भोगों की नश्वरता का वर्णन करते हुए निर्वाण के पथावलम्बन के लिए प्रेरित किया गया है– "वायु से टकराये मेघमण्डल में लटकती हुयी जल की बूँद की भाँति आयु विनाशी है। भोग बादलों की घटा के मध्य कौंधने वाली बिजली की तरह चंचल है। जवानी के भोग–विलास जल के वेग के समान चपल हैं। शरीर क्षणभंगुर, अतः इस संसार से भयभीत होकर तू निर्वाण की खोज कर।" [16] प्रसंगप्राप्त जीवन की क्षणभंगुरता का किसी कवि ने बहुत मार्मिक चित्रण किया है–

क्षणभंगुर जीवन की कलिका कल प्रात को जाने खिली न खिली,
मलयाचल की श्रुत शीतल मन्द सुगन्ध चली न चली।
कलिकाल कुठार लिये फिरता तन नम्र पे चोट झिली न झिली,
भज ले प्रभु नाम अरी रसना फिर अन्त समय में हिली न हिली।।

जीवन की नश्वरता का ज्ञान होने पर क्या करना चाहिए इसको बताने के लिए योगवाशिष्ठ एक सुन्दर रूपक का प्रयोग करता है–

मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वारः परिकीर्तिताः,
शमो विचारः सन्तोषश्चतुर्थः साधुसंगमः।
एते सेव्याः प्रयत्नेन चत्वारो द्वौ त्रयोऽथवा,
द्वारमुद्घाटयन्त्येते मोक्षराजगृहे तथा।।

इस मोक्ष के द्वार पर निवास करने वाले चार द्वारपाल बतलाये जाते हैं जिनके नाम हैं– शम, विचार, संतोष और चौथा साधुसंगम। मनुष्य को इनमें से दो, तीन अथवा चारों का प्रयत्नपूर्वक सेवन करना चाहिए, क्योंकि इनका भली–भाँति से सेवन किए जाने पर ये मोक्षरूपी राजमहल के द्वार खोल देते हैं।

न्यायदर्शन में मोक्ष को निःश्रेयस नाम से लक्षित किया गया है। न्यायसूत्रकार गौतम प्रमाण, प्रमेयादि षोडश पदार्थों के तत्वज्ञान को निःश्रेयस की प्राप्ति का कारण मानते हैं। [17] केशव मिश्र रचित 'तर्कभाषा' में मोक्ष को अपवर्ग कहा गया है जिसकी प्राप्ति होने पर एक शरीर, छह इन्द्रिय, छह विषय, छह बुद्धि (ज्ञान) तथा सुख–दुःख इन इक्कीस प्रकार के दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है। [18] अपवर्ग प्राप्ति की इस प्रक्रिया में शास्त्रों के अध्ययनादि से विषयों के दोषदर्शनरूप तत्वज्ञान के कारण विषयों के प्रति विरक्ति एवं मोक्ष प्राप्ति की इच्छा जागृत होती है। मुमुक्षु साधक ध्यानादि के द्वारा आत्मसाक्षात्कार करता है जिससे वह अविद्यादि पंचक्लेशों से मुक्त हो जाता है। रागादि के अभाव के कारण निष्कामभाव से कर्म करता है फलतः नवीन धर्माधर्मरूप संस्कारों की उत्पत्ति नहीं होती है। संचित कर्मों के भोग के उपरान्त शरीर का नाश होने पर कर्मसंस्कारों के अभाव के कारण नवीन शरीर की उत्पत्ति न होने से इक्कीस प्रकार के दुःखों से आत्मा निवृत्त हो जाता है। यही 'अपवर्ग' कहलाता है।

सांख्यदर्शन के अनुसार दो तत्व हैं 1. प्रकृति 2. पुरुष। प्रकृति भोग और अपवर्ग के द्वारा पुरुष को विवेक ज्ञान कराती है। उस विवेकदशा में पुरुष 'कैवल्य' को प्राप्त होता है। कैवल्य ही मोक्ष का पर्य्यायवाची है। अन्य दर्शनों से भिन्न सांख्यशास्त्र में पुरुष के बन्धन और मोक्ष का निराकरण कर उसे प्रकृति का ही बन्धन और मोक्ष कहा गया है। [19] गुणातीत होने के कारण पुरुष न बन्धन में आता है न मुक्त होता है अपितु वह तो प्रकृति नटी के इस बन्धनमोक्ष की लीला का दृष्टामात्र है। इसीलिये उसे साक्षी कहा गया है। प्रकृति अपने ही कार्य बुद्धि के धर्म–अधर्म, अज्ञान, विराग–राग तथा ऐश्वर्य–अनैश्वर्य नामक धर्मों से अपने को ही बाँधती है और ज्ञान नामक धर्म से मुक्त कर लेती है। [20]

योगदर्शन के मतानुसार मोक्ष की प्रक्रिया सांख्यदर्शन से केवल एक विषय को छोड़कर पूर्णतः साम्य रखती है। यह विषय है ईश्वरतत्व की उपस्थिति। कैवल्यपाद में कैवल्य का यह स्वरूप बतलाया गया है– जीवात्मा का भोग और अपवर्ग सिद्ध करके पुरुषार्थशून्य कार्यकारणरूप गुणों का प्रकृति में लीन हो जाना 'कैवल्य' है। अथवा दूसरे शब्दों में कहें तो बुद्धि आदि पदार्थों से जीवात्मा का पुनः सम्बन्ध न होना, केवल अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना 'कैवल्य' है। [21] सत्वादि तीन गुण भोगापवर्गरूप दोनों प्रयोजनों को सिद्ध करने के पश्चात् पुरुषार्थशून्य हो जाते हैं। जब इन गुणों का कोई प्रयोजन नहीं रहता, तब ये अपनी प्रकृति में लीन हो जाते हैं। अर्थात् ईश्वर इनको प्रकृति में लीन कर देता है।

अष्टावक्रगीता में बन्धन का कारण अहंकार, तृष्णा एवं विषयों की सन्निधि को माना गया है। मोक्ष के लिए बन्धन के कारणों का ज्ञान एवं स्वयं को चित्रूप , साक्षीरूप मानकर अहंकार तृष्णा एवं विषयों से दूर रहने का निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। अष्टावक्र मुक्तिकामी शिष्य को समझाते हैं– 'यदि मुक्ति चाहते हो तो हे तात! विषयों को विष के समान त्याग दो और क्षमा, आर्जव, दया, सन्तोष और सत्य का अमृत के समान सेवन करो'। [22]

अश्वघोष ने अपने महाकाव्य 'बुद्धचरितम्' में मोक्षपद को 'उत्तमपुरुषार्थ' कहकर सम्बोधन किया है तथा उसके स्वरूप का कुछ इसप्रकार वर्णन किया है– "जिसमें न जरा है, न भय, न रोग, न जन्म, न मृत्यु और न मानसिक कष्ट है, उसी पद को मैं उत्तमपुरुषार्थ मानता हूँ, जिसमें बार–बार कर्म नहीं करना पड़ता है।" [23] अश्वघोष मोक्ष की प्राप्ति का रहस्य वैराग्य को मानते हैं–

मोक्षस्योपनिषद् सौम्य वैराग्यमिति गृह्यताम्। सौन्दरनन्द, 13–22

आचार्य शंकर ने विषयानुराग को बन्धन का कारण तथा विषयविराग को मुक्ति का कारक बताया है–

बद्धो हि को यो विषयानुरागी
का वा विमुक्तिर्विषये विरक्तिः। प्रश्नोत्तरी, 2

पालिभाषा में उपनिबद्ध 'धम्मपद' में महात्मा बुद्ध के उपदेश संगृहीत किए गये हैं जिसमें मुक्ति के विषय में वे कहते हैं––

निट्ठंगतो असन्तासी वीततण्हो अनंगणो।
उच्छिज्जभवसल्लानि अन्तिमो यं समुस्सयो।। धम्मपद, 24–18

अर्थात् जिसके पाप–पुण्य समाप्त हो गये, जो त्रास–उत्पादक नहीं है, जो तृष्णारहित और मलरहित है। वह भव के शल्यों को उखाड़ेगा, यह उसका अन्तिम देह है।

कबीरदास जी अपने अनूठे ढंग से बंधन व मुक्ति का वर्णन करते हुये कहते हैं कि इस संसार में जरा, मरण आदि व्याधिओं की भरमार है अतः हमें ऐसे देश चलना चाहिए जहाँ जरा और मरण की व्याधियाँ न हों, किसी की मृत्यु की खबर सुनने को न मिलती हो और यदि मिले भी तो वैध के रूप में विधाता की मौजूदगी सदा रहती हो–

जहाँ जुरा मरण व्यापै नहीं, मुवा न सुणिये कोइ।
चली कबीर तिसि देसड़ै, जहाँ बैद विधाता होइ।। कबीर ग्रन्थावली, 76।

कबीर की दृष्टि में मुक्ति के लिए अपने आराध्य के प्रति भाव, भक्ति व विश्वास की आवश्यकता होगी––

भाव भगति विश्वास बिन, कटै न संसै सूल।
कहै कबीर हरि भगति बिन, मुकति नहीं रे भूल।। कबीर ग्रन्थावली, 245।

तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' में मोक्षप्राप्ति के लिए धर्मजन्य वैराग्य एवं योगजन्य ज्ञान को आवश्यक माना है–

धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद वेद बखाना।।
रामचरितमानस, 3–61–1

वही 'दोहावली' में वे हरिभजन को भवसागर से पार होने का उपाय मानते हैं–

बारि मथे घृत होय बरू सिकता ते बरू तेल।
बिन हरिभजन न भव तरिअ यह सिद्धान्त अपेल।। दोहावली, 126

महात्मा गाँधी के शब्दों में–– "मोक्ष ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है।"[24] अतः उनका कहना है कि 'यह समझकर कि शरीर बड़ा धोखेबाज है, इसी क्षण मोक्ष की तैयारी करें।' [25]

कालजयी कृति 'गीतांजली' के प्रणेता गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर मुक्ति के विषय में कहते हैं–– "वैराग्य–साधना से जो मुक्ति मिलती है, वह मेरे लिए नहीं है। मैं तो असंख्य बन्धनों के बीच आनन्दमयी मुक्ति का स्वाद प्राप्त करूँगा।" [26]

स्वामी विवेकानन्द मुक्त कौन हैं? बताते हैं–– "मुक्त वही है जिसने अपना सब कुछ दूसरों के लिए त्याग दिया। किन्तु जो दिन–रात 'मेरी मुक्ति' का राग अलापने में ही अपने मस्तिष्क को खराब करते हैं, वे अपने वर्त्तमान और भावी कल्याण का नाश कर व्यर्थ ही इधर–उधर भटकते रहते हैं।" [27]

इस प्रकार वैदिक एवं लौकिक संस्कृतसाहित्य, पालिसाहित्य तथा हिन्दीसाहित्य पर संक्षेपेण दृष्टिवीक्षण करने पर यह साधुतया सिद्ध होता है कि मोक्षविषयक भारतीयविचारों की एक समृद्ध परम्परा रही है। जीवन एवं मोक्ष के विषय में भारतीयों की दृष्टि सन्तुलित है। जिसमें सत्य, सरलता, दया, सन्तोष, तपादि आचारव्यवस्था के साथ–साथ ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग का सांगोपांग समावेश किया गया है।

सन्दर्भ

1. विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
   अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।। यजुर्वेद, 40–14।
2. बृहदारण्यकोपनिषद्, 1–3–28।
3. तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृत्तं न माया चेति।
   प्रश्नोपनिषद्, 1–16।
4. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
   तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।। यजुर्वेद, 31–18।
5. पदार्थभावनादार्ढ्यं बन्ध इत्यभिधीयते।
   वासनातानवं ब्रह्मन्मोक्ष इत्यभिधीयते।। महोपनिषद्, 2–41।
6. मनसेवैन्द्रजालश्रीर्जगति प्रवितन्यते।
   यावदेतत्संभवति तावन्मोक्षो न विद्यते। वहीं।
7. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
   म कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। गीता, 2–47।
8. योगस्थः कुरू कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
   सिद्ध्यसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योगमुच्यते।। गीता, 2–48।
9. कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
   जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।। गीता, 2–51।
10. मामुपेत्य पुनर्जन्मः दुःखालयमशाश्वतम्।
    नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।। गीता, 8–15।
11. आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन।
    मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।। गीता, 8–16।
12. वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः।
    अहिंसा गुरूसेवा च निःश्रेयसकरं परम्।। अग्निपुराण, 162–4।
13. सदाचारवृतः प्रज्ञो विद्याविनयशिक्षितः।
    पापेऽप्यपापः परुषे ह्यभिधत्ते प्रियाणि यः।
    मैत्रीद्रवान्तःकरणस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता।। विष्णुपुराण, 3–12–41।
14. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। पातंजलयोगसूत्र, 2–30।
15. शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। पा0योगसूत्र, 2–31।
16. आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलम्बाम्बुवद् भंगुरं,
    भोगा मेघवितानमध्यविलसद्सौदामिनी चंचलाः।
    लोला यौवनलालना जलरयः कायः क्षणापायवान्,
    पुत्र त्रासमुपेत्य संसृतिवशान्निर्वाणमन्विष्यताम्।। योगवाशिष्ठ, निर्वाणप्रकरण, उत्तरार्द्ध, 139–33।
17. प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पि वतण्डाहेत्वाभासछलजातिनिग्रहस्थानानां तत्वज्ञानान्निः श्रेयसाधिगमः।। गौतमकृत न्यायसूत्र, 1–1।
18. मोक्षोऽपवर्गः। स चैकविंशतिप्रभेदभिन्नस्य दुःखस्यात्यान्तिकी निवृत्तिः। केशवमिश्रकृत तर्कभाषा, प्रमेयनिरूपणम्, 12।
19. तस्मान्न बध्यतेऽसौ न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्।
    ससरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृति।। सांख्यकारिका, 62।
20. रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः।
    सैव च पुरुषार्थम्प्रति विमोचयत्येकरूपेण।। सांख्यकारिका, 63।
21. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति। योगसूत्र, कैवल्यपाद, 34।
22. मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत् त्यज।
    क्षमार्जवदयातोषसत्यं पीयूषवद् भज।। अष्टावक्रगीता, 1–2।
23. पदे तु यस्मिन्न जरा न भीर्न रूङ् न जन्म नैवोपरमो न चाधयः।
    तमेव मन्ये पुरुषार्थमुत्तमं न विद्यते यत्र पुनः पुनः क्रिया।। बुद्धचरितम्, 11–59।
24. हिन्दी नवजीवन, 2–11–1924।
25. गांधी की साधना, पृ0 144।
26. गीतांजली, पृ0 73।
27. उत्तिष्ठतजाग्रत, पृ0 50।